ISSN : 2347-7660 (Print) | ISSN : 2454-1818 (Online)

# नैतिक चेतना के प्रसार में क्षेत्रीय संतों की भूमिका (वाराणसी परिक्षेत्र के विषेश संदर्भ में)

**डॉ0 नूतन सिंह,**
रीडर, इतिहास विभाग, युवराज दत्त पी.जी. कालेज,लखीमपुर खीरी।
**nutan.ydc@gmail.com**

## प्रस्तावना

किसी युग विषेश में बदलाव समकालीन चिन्तन में परिवर्तन के बिना विष्लेशित नहीं किया जा सकता। बौद्धिक परिवर्तन ही किसी युग के मूल्यांकन का मूल आधार है। इसलिये यह आवष्यक हो जाता है कि किसी युग विषेश के राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की परीक्षा से पूर्व उस युग के नैतिक मूल्यों को समझा, परखा जाय। नैतिक मूल्य का लक्ष्य मानव को व्यापक धरातल प्रदान करना तथा उसे व्यक्तिगत क्षुद्रता से ऊपर उठाना है। नैतिक मूल्य असंख्य रूपों में अवस्थित होता है तथा जीवन की अनगिनत संभावनाओं एवं दृश्टियों को उद्घाटित करता है। निःसंदेह भारतीय दर्षन की मूल चेतना आत्मसाक्षात्कार है। सांस्कृतिक चेतना के आंतरिक पक्षों का संप्रेशण इसका मूल स्वर है।

उचित–अनुचित, धर्म–अधर्म, पाप–पुण्य आदि पर विचार करने में जो मानसिक स्थिति और क्रियाएं होती हैं, उन्हें नैतिक चेतना कहा जाता है। दार्षनिक दृश्टि से नैतिक चेतना एक जटिल मानसिक स्थिति है। इनमें किसी विशय का ज्ञान, भावना एवं क्रिया निहित होती है। मनुश्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज का स्वरूप सदा परिवर्तनषील रहा है अतः सामाजिक परिवर्तनों के साथ–साथ नैतिक चेतना का भी विकास हुआ।

मानव सभ्यता के विकास क्रम में धर्म की एक निष्चित भूमिका रहती है। वह समग्र मनोग्रंथि जिससे धर्म का मानसिक पक्ष निर्मित होता है – जैसे विचार पूर्वाग्रह, अंधविष्वास, किसी निष्चित प्रक्रिया के अंतर्गत अनायास ही उत्पन्न नहीं होता अथवा उसके साथ ही समाप्त नहीं हो जाता। बल्कि उसका स्वयं का अपना एक जीवन और गति होती है। जिसका सामाजिक ढाँचे के साथ क्रिया प्रतिक्रिया होती है।[1]

इस युग की नैतिक चिन्तन धाराओं ने युग मानस पर प्रतिपलित होकर भी धर्म के आचरण पक्ष में परम्परागत, रूढिवादी, षास्त्रीय तथा सामप्रदायिक आचरण की मर्यादाओं का विरोध किया। मुक्त भावों की स्वच्छन्दता, विचारों की नवीनता और व्यक्तित्व का विद्रोह इस युग के साहित्य की मूल विषेशता है।

## पंथ/सम्प्रदाय प्रवर्तन

सम्प्रदाय षब्द का अर्थ है धर्म का पथ विषेश। सम्प्रदाय अपने अनुयायी को एक पथ प्रदान करता है, जिस पर चलकर वह धर्म के द्वारा निर्दिश्ट लक्ष्य पर पहुँच सके। पंथ व सम्प्रदाय षब्द के रूप में अलग–अलग ढंग से प्रयुक्त हुआ। मूल प्रवर्तक के नाम से चली आ रही परम्परा में पंथ षब्द प्रयुक्त हुआ। उसके अनुयायियों द्वारा निकली परम्परा में नाम या किसी अन्य विषिश्टता के साथ बहुधा सम्प्रदाय षब्द जुड़ा। जैसे सतनामी सम्प्रदाय निरंजनी सम्प्रदाय। पंथ एवं सम्प्रदाय के अतिरिक्त एक अन्य षब्द 'सत्संग' का प्रयोग कुछ विशेष वर्ग के अनुयायियों द्वारा किया गया जैसे – राधास्वामी, देवी प्रसाद।

पंथ एवं सम्प्रदाय प्रवर्तन की प्रवृत्ति में जीवनगत अनुभूत सत्यों के आधार पर ही सिद्धान्तों का निर्माण हुआ। स्वतंत्र चिन्तन का तूफान, ईष्वर के अस्तित्व पर विचार, पुण्य संवर्धन के विचार भी कालक्रम में पंथों के उदय के कारक माने जा सकते हैं। इनके संस्थापकों में अपेक्षित व्यक्तिपरक तत्व विद्यमान रहता है।[2] समाज षास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृश्टि से पंथ निर्माण की पृश्ठभूमि में किसी महान व्यक्तित्व के नेतृत्व में विषवास का प्रसार महत्वपूर्ण कारक होता है।

वस्तुतः समस्त उत्तर प्रदेश में पंथ निर्माण का कार्य नानक द्वारा प्रारम्भ माना जाता है। परषुराम चतुर्वेदी पंथ निर्माण के युग का प्रारम्भ संत मलूक दास से मानते हैं [3]

पंथ निर्माण के बाद संतों के सिद्धान्त प्रतिपादन एवं आत्मभिव्यक्ति को 'बानियों' का स्वरूप प्राप्त हुआ।[(4)] संतों ने अपनी बानियों में स्वानुभूति की अभिव्यक्ति की। इनका पूर्व–निष्चित षास्त्र तथा परम्परा से प्राप्त धारणाओं में विष्वास नहीं था। इसीलिए संतमत स्वभावतः सम्प्रदाय विषेश के मूल प्रवर्तक द्वारा प्रभावित किये गये सिद्धान्तों का संग्रह मात्र नहीं है, न ऐसी पद्धति विषेश का ही परिचायक समझा जा सकता है जिसे विभिन्न संतों के उपदेषों के आधार पर निर्मित किया गया हो। इसमें आस्था रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिये यह नितान्त आवष्यक है कि वह इसकी बातों को अपने निजी अनुभवों द्वारा प्रमाणित कर ले।[(5)] 17 वीं षताब्दी आते–आते बानियों का संग्रह किया जाने लगा। 17 वीं–18 वीं सदी में बाउत गीतों का प्रचार हुआ। इनके रचयिता ग्रामीण संत कवि थे। ये बाउत गीत हिन्दू–मुस्लिम जनता की समन्वित धार्मिक

मान्यताओं को सीधी–सादी भाव प्रवण भाशा में व्यक्त करते हैं।[6]

मूल रूप से भक्ति व साधना का लगभग एक ही बिन्दु होने के बावजूद पंथों में परस्पर भेद प्रतीत होता है और यह भेद संभवतः अपनी अलग पहचान बनाने के लिये प्रतीत होता है। डा0 पीताम्बर दत्त बड़थवाल स्वीकार करते हैं कि – अद्वैत भेदाभेद, विषिष्टाद्वैत इन तीन प्रकार की दार्षनिक मान्यताएं सभी पंथों में विद्यमान हैं जबकि कहीं–कहीं संतों की विचारधारा में पारस्परिक सूक्ष्म भेद भी अभिलक्षित होता है।[7]

इन पंथों व सम्प्रदायों के अनुयायियों ने विभिन्न संतों के विचारों व पंथों के मध्य तुलना आरम्भ की। व्यापक परिणामों की दृश्टि से जान पड़ने लगा कि सभी धर्म व सम्प्रदाय अपने–अपने मूल सिद्धान्त की दृश्टि से एक समान हैं और इसीलिये यदि संसार में एकता तथा समता का भाव स्थापित करना 'अभीश्ट' है तो विभिन्न धर्मों व सम्प्रदायों के प्रमुख सिद्धान्तों में समन्वय लाना आवषयक होगा।[8]

इस काल में संतमत में सबसे प्रधान प्रवृत्ति जो कार्य करती हुई दृश्टिगत होती है वह है – समन्वय की प्रवृत्ति [9]

संतमत या पंथक या विचारधारा के निर्माण में मनोवैज्ञानिक दृश्टिकोण से गुरू की महत्ता की अवधारणा देखने को मिलती है। संतों ने स्वानुभूत सत्य के सहारे अपना दर्शन और पंथ स्वतः सृजित किया। किसी नियम – परम्परा परिपाटी का अनुगमन नहीं किया। स्वानुभूति की संपूर्ण प्रक्रिया के पीछे 'सद्गुरू' गौरव की अवधारणा है। भारतीय जीवन व वांगमय में गुरू को अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राचीनकाल से प्राप्त है[10] अपने पारलौकिक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये गुरू की महत्ता पर समग्र साधना को संयुक्त करने वाले संत–मनीशी कालक्रम में अपने षिष्यों या समर्थकों के लिये ईष्वर तुल्य गुरू के रूप में उनके मानस पटल पर अंकित होने लगे तथा वैसा ही उन्हें सम्मान मिलने लगा। इसका मनोवैज्ञानिक परिणाम यह हुआ कि स्थापित षिष्य परम्परा में अलग–अलग संतों के साथ समूह बनता गया जो कालक्रम में पंथ निर्माण की पृष्ठभूमि का कारक बना।

## वाराणसी परिक्षेत्र में सम्प्रदायों / पंथों का विकास

संतों की परम्परा प्रायः जनपदीय रही है जन–जीवन का परिश्कार उनका इष्ट रहा है। क्षेत्रीय संत लिखते– बोलते भी जनसाधारण की बोलियों में ही रहे हैं। विवेच्यकालखंड में वाराणसी परिक्षेत्र में प्रचलित संत परम्पराओं में प्रमुख हैं – बावरी पंथ, षिवनारायणी सम्प्रदाय एवं अघोर–सरभंग सम्प्रदाय।

## गाजीपुर क्षेत्र : बावरी पंथ का जन्म स्थल

इस परम्परा का कोई क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता, न इसके प्रचारकों की इतनी रचनाएं ही मिलती हैं जिनके आधार पर कुछ निष्चित अनुमान किया जा सके। अनुश्रुतियों के अनुसार इस परम्परा का प्रारम्भ विवेच्य परिक्षेत्र के गाजीपुर जिले में हुआ है [11] बावरी पंथ की रूपरेखा दिल्ली प्रांत में जाकर निष्चित हुयी थी किन्तु इस पंथ का पूर्ण विकास विवेच्य परिक्षेत्र में ही संभव हो सका।

बुलाकी राम जो बुला साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए इस पंथ के प्रथम संत थे। बुला साहब गाजीपुर जनपद के भुड़कुड़ा गांव के निवासी थे। ये जाति के कुर्मी थे। इनके द्वारा बावरी सम्प्रदाय प्रवर्तन के संबन्ध में कई जनश्रुतियां हैं। वस्तुतः इनके ऊपर दिल्ली के 'यार मुहम्द षाह' या 'यारी साहब' के सत्संग का प्रभाव था। इन्हीं से दीक्षा लेकर बुला साहब ने उनका पंथ चलाया। इन्होंने भुरकुड़ा में एक कुटी बनाकर सत्संग का कार्य प्रारम्भ किया जो इस समय 'रामबन' के नाम से प्रसिद्ध है। बुला साहब की मृत्यु 77 वर्श की आयु में सन् 1709 में हुई।[12] इन्होंने अपनी रचनाओं में यारी साहब के प्रति श्रद्धा प्रकट की है तथा नामदेव, सदना, कबीर, रैदास नानक, धन्ना, कान्हड़दास तथा गुरू भाई केषवदास को आदर्षवत माना है।[13]

बुला साहब के पदों में भले ही उतनी अन्तर्मुखता या दार्शनिकता नहीं है, परन्तु अपनी परम्परा के कवियों की भांति इनका मन भी भीतर ही भीतर भगवान की भक्ति में पगा था। अपने विचारों को व्यक्त करने का इनका बड़ा ही अनूठा और निराला ढंग था जो सीधे मर्म को छूता है।[14]

बावरी पंथ के दूसरे संत गुलाल साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए। ये बंसहिरि ताल्लुका, परगना , षादियाबाद तहसील जनपद–गाजीपुर के जमीदार थे जिसके अंतर्गत भुरकुड़ा गांव अवस्थित है। इनके हृदय की उदारता तथा भावुकता का आभास इस तथ्य से लग सकता है कि इन्होंने अपने हलवाहे के आध्यात्मिक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसका षिश्यत्व स्वीकार कर लिया। इन्होंने अपनी रचनाओं में अपने पूर्ववर्ती संतों के नाम बड़ी श्रद्धा व भक्ति के साथ लिये हैं। इनकी तालिका में कुछ सगुणोपासक भक्तों का भी उल्लेख है[15]

गुलाल साहब ने अनहद षब्द, नाम महिमा, विनय, भेदाभेद, माया ब्रह्म विशयों के अतिरिक्त भगवत्प्रेम का सुन्दर निरूपण किया है। अन्य संतों की भांति इन्होंने भी आत्मषुद्धि पर बल दिया। गुलाल साहब की रचनाओं के अंतर्गत हमें भक्ति की भावना इनके गुरू पूर्वजों से कहीं अधिक मात्रा में दिखाई देती है। इनकी भाशा में भोजपुरी षब्द तथा मुहावरों की बहुतायत है। गुलाल साहब का देहावसान 1760 ई0 में हुआ।[16]

बावरी संप्रदाय के तीसरे संत थे–भीखा साहब। इनका जन्म खानपुर गोहना मुहम्मदाबाद जनपद आजमगढ़ में हुआ था। आठ वर्श की आयु से ये साधुओं के सत्संग में रहने

लगे । कालक्रम में ये गुलाल साहब के षिष्य तथा 1760 ईमें उनके उत्तराधिकारी बने और 31 वर्शों तक निरन्तर सत्संग किया। 1791 ई0 में मृत्यु हुई।[17]

अन्य समकालीन संतों की भांति भीखा साहब ने भी ब्रह्मज्ञान, अनहद नाद, सत्गुरू महिमा, नाम महिमा और सच्ची भक्ति का निरूपण किया। उन्होंने भक्तियोग तपा ज्ञान–योग के दु:साध्य मार्ग को अपनाने की बात कही है। गुलाल साहब की भांति भीखा साहब की रचनाओं में आत्मानुभव संबन्धी वर्णनों का बाहुल्य है और उनका प्रवाह भी उल्लेखनीय है।[18]

भीखा साहब के पश्चात चतुर्भुज साहब, तत्पष्चात नरसिंह साहब जो गाजीपुर में शेखनपुर के निवासी थे, उसके बाद बलिया जनपद के कुमार साहब ने उत्तराधिकार संभाला एवं पंथ के अनुकूल कार्य करते रहे।

## शिवनारायणी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय का सर्वप्रथम उल्लेख एच0 एच0 विल्सन ने किया है[19] जिससे ज्ञात होता है कि इस सम्प्रदाय के प्रणेता षिवनारायण राजपूतों की नरौनी शाखा के एक राजपूत थे। वे गाजीपुर के निकट चाँदवन नामक गांव के निवासी थे। इनका आविर्भाव मुगल बादषाह मुहम्मद षाह के समय में हुआ था।

1891 में एच0 एच0 रिजली[20] एवं 1896 में डब्ल्यू क्रुक[21] के प्रकाशित ग्रंथों में षिवनारायणी सम्प्रदाय की रचनाओं का उल्लेख मिलता है। इन्होंने 'रैदासी' एवं 'षिवनारायणी' को एक समान समझा है[22] जी0 डब्ल्यू ब्रिग्स ने भी प्रसंगवष उल्लेख किया है।[23] 1907 एवं 1909 में एच0 आर0 नेविल[24] ने भी स्थानीय कवियों में संत षिवनारायण का उल्लेख किया है। जी0 एच0 ग्रियर्सन ने इस सम्प्रदाय तथा संत षिवनारायण के विशय में सर्वथा व्यवस्थित विवरण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।[25]

क्षितिमोहन सेन ने दो तथ्यों को प्रस्तुत किया है।[26] प्रथम यह कि षिवनारायण दाराषिकोह के सिद्धान्तों से प्रभावित थे। द्वितीय षिवनारायण के समकालीन उर्दू कवियों बली अलाह, आबू और नाजी ने उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की है। षिवनारायणी सम्प्रदाय के अंतर्गत इस तथ्य का बड़े ही गर्व से कथन किया जाता है कि मुहम्मद षाह ने संत षिवनारायण के प्रभाव में आकर उनकी षिश्यता स्वीकार कर ली थी।

संत षिवनारायण के पदों में भक्ति व वैराग्य दोनों का ही सम्यक् प्रतिपादन है। ईष्वर भक्ति, ईष्वर से साक्षात्कार और इन्द्रिय निग्रह द्वारा ईष्वरोपासना के चरम लक्ष्य तक पहुँचने के लिये षिवनारायण ने जनपदीय रूपों एवं प्रतीकों का सहारा लेकर उसे वर्णित किया। अपने पदों में उन्होंने पत्थर पूजन मौनी बनने इत्यादि बाह्याडम्बर एवं बाह्याचार को व्यर्थ बताया है।[27]षिवनारायण सम्प्रदाय के अनुयायियों में हिन्दू–मुसलमानों के अतिरिक्त इसाई भी जान पड़ते हैं। जाति, वर्ण आश्रम धर्म का वर्गीकरण इस सम्प्रदाय में नहीं था। स्त्रियों को पुरुशों के समान अधिकार था।[28]

षिवनारायण का व्यक्तित्व[29] यथार्थतः एक भक्त का व्यक्तित्व था। भक्त गुत्थियों की सूक्ष्मता में नहीं जाता। उसे तर्क की षास्त्रीय प्रणाली भी नहीं भाती। वह अपने आराध्य को प्रेम करता है। प्रेम के जितने स्वरूप हैं, उन सब के आधार पर वह उससे रागात्मक संबन्ध स्थापित करने की चेश्टा करता है। भक्ति भावना के इसी स्वरूप के कारण षिवनारायण की ब्रह्म, जीव , माया, आत्मा, जगत आदि विशयक मान्यतायें षुद्ध दार्षनिक प्रणाली से अलग हो गयी है। संत षिवनारायण के मत की महत्वपूर्ण विषेशता उसकी समन्वय की प्रवृत्ति है जो भारतीय संस्कृति की मूल विषेषता है।

## अघोर तथा सरभंग सम्प्रदाय

अघोर, औघड़, अघोरी को प्रायः एक दूसरे का पर्याय समझा जाता है[30] ये षब्द साधारणतः किसी ऐसे व्यक्ति को सूचित करते हैं जो किन्हीं घिनौनी वस्तुओं का व्यवहार करता हो अथवा जो वैसे किसी मत का प्रचार करने वाले पंथ विषेश का अनुयायी होने के कारण तदनुकूल भेश धारण करता हो। 'अघोरपंथ' या 'औघड़ पंथ' का नाम आते ही हम किसी ऐसे सम्प्रदाय की कल्पना करने लग सकते हैं जिसका संबन्ध या तो षैव, षाक्त या दत्तात्रेय सम्प्रदायों की किसी षाखा–विषेश के साथ होगा।

इसी प्रकार सरभंग षब्द को भी 'स्वरभंग', 'षरभंग' और कभी–कभी सर्वंग षब्द का एक अन्यतम रूप समझा जाता है। तदनुसार इसका अर्थ क्रमषः स्वर को साधने वाला, पांचों इन्द्रियों (ष्यार–पंचवाण) को वश में रखने वाला तथा सर्वंग पर षासन करने वाला तथा समदर्शी किया जाता है।[31] परन्तु यहाँ न तो अघोर पंथ उक्त षैव, षाक्त या दत्तात्रेय सम्प्रदायों में से किसी एक के साथ सीधा संपर्क रखने वाला कहा जा सकता है, न 'सरभंग–सम्प्रदाय' को ही हम किसी योग साधकों का वर्ग मानकर उसका ठीक परिचय दे सकते हैं।

अघोर पंथ तथा सरभंग सम्प्रदाय इन दोनों के किसी एक ही मूल स्रोत का होना अभी तक अनुश्रुतियों पर आधारित है।[32] इसके लिये कोई पुश्ट ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। इन दोनों के मूलतः एक और अभिन्न होने के परिणाम इनकी कतिपय समानताओं के आधार पर ही निकाला जाता आया है।

डब्ल्यू क्रुक ने अघोर पंथ को किनाराम द्वारा प्रवर्तित तथा इसी पंथ की एक षाखा का नाम सर्वंगी दिया है किन्तु ये भी बताया कि सर्वंगी के अनुयायी उतना घृणित व्यवहार जैसे – मुर्दे का मांस खाना, खोपड़ी में मदिरापान नहीं प्रदर्षित करते।

## अघोरमत का किनारामी सम्प्रदाय

अघोरमत के उत्तरवर्ती स्वरूप के अंतर्गत विवेच्य परिक्षेत्र के 'किनारामी सम्प्रदाय' का विषेश महत्व है। यह सम्प्रदाय किनाराम के नाम पर प्रसिद्ध है। किनाराम का जन्म संभवतः 1684 में हुआ था।(33) किनाराम का अपना आध्यात्मिक अनुभव क्रमषः 'वैश्णव मत' तथा 'अवधूत मत' का सार ग्रहण करता हुआ अन्त में अघोरपंथ की विषिश्ट विचार धारा द्वारा पुश्टि प्राप्त कर चुका था और वह इन सभी के समन्वय पर आश्रित रहा। अपने–अपने ढंग की क्रमषः वैश्णवों की भक्ति परक तथा अवधूतों की योगपरक सगुणोपासनाओं ने यहां आकर अपनी साम्प्रदायिक विषेशताओं का त्याग कर दिया।(34) इन दोनों की मूल सरिताओं ने अंत में अघोरमत के स्रोत के साथ प्रवाहित होना स्वीकार कर लिया।

किनाराम के अनुयायियों पर सगुणोपासना का रंग अधिकाधिक चढ़ता आया है जो उनकी रचनाओं से प्रकट है। किनाराम ने दत्तात्रेय को अपना परमगुरू तथा पथ प्रदर्षक स्वीकार किया है।(35)

किनाराम के ग्रंथ विवेकसार' के अनुषीलन से ज्ञात होता है कि इसकी रचना सन् 1755 ई0 में हुयी थी। किनाराम के अनुसार–अनुभव वही 'है जो सदा विचार या भावना में परिणत हो और जिसके अनुसार सत्य षब्द को ग्रहण करके संसार के पार लाया जा सके।(36)

किनाराम के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर राजा बलवंत सिंह ने रामगढ़ के पूजा व्यय के निमित्त 96 गाँवों में प्रत्येक से एक रूपये की वार्शिक आय निष्चित कर दी थी। रामगढ़ और क्रीं कुंड के अतिरिक्त अघोर पंथ के दो अन्य प्रसिद्ध मठों में से एक 'जौनपुर जिले का गोमती तटवर्ती हरिहरपुर का है और दूसरा देवल का मठ है जो चौसा के निकट गाजीपुर जिले में स्थित है।

किनाराम ने अपने प्रथम गुरू षिवाराम की वैश्णवी मर्यादा निभाने के उद्देष्य से भी चार मठों मारूफपुर, नमीडीह, परानपुर और महुवर की स्थापना की। इनके अघोरपंथ में अनेक मुसलमानों तक का सम्मिलित होना कहा जाता है।(37)

## अघोरमत का सरभंग सम्प्रदाय

सरभंग सम्प्रदाय की स्थापना सर्वप्रथम किसके द्वारा हुयी थी यह ज्ञात नहीं है। सरभंग सम्प्रदाय और अघोरमत में पर्याप्त समानता होने के कारण अनेक विद्वान अघोरमत और सरभंग मत को एक ही मानते हैं। सरभंग संप्रदाय की विषिश्ट परम्पराओं में हरलाल बाबा तथा करता राम बाबा की दो परम्पराओं के नाम लिये जाते हैं। हरलाल बाबा ने 1793 ई0 में गंडकी नदी के तट पर बड़हटवा ग्राम में अपना मठ स्थापित किया। करताराम का जन्म गाजीपुर जिले के ददरी गांव (बर्तमान बलिया जिले के अंतर्गत) में हुआ था। ये निरन्तर राम–राम की धुन में मस्त रहा करते थे। ये किसी दूसरे का अन्न ग्रहण करना पाप समझते थे और कभी– कभी बानियों की रचना भी किया करते थे।(38)

निश्कर्शतः हम यह कह सकते हैं कि जब सामाजिक कठोरता एवं असंगत सामाजिक प्रथाएं जैसे– अंधविष्वास नरबलि, झाड़–फूंक आदि 18वीं षदी के भारत की विशेशता बन गयी थी। धर्मों में रूढ़िवादिता एवं घोर आड़म्बर आ गया था। कोई महान धार्मिक, आध्यात्मिक उपदेषक नहीं था जो अज्ञानियों को मार्ग दिखाता कबीर, नानक, चैतन्य के सामाजिक दर्षन के उपदेषों की प्रतिध्वनि सुनने को नहीं मिलती थी। ऐसे वातावरण में इन जनपदीय संतों ने सीमित क्षेत्रों में विभिन्न वर्गों पर अपना धार्मिक तथा नैतिक प्रभाव डाला। यद्यपि उनके सामाजिक तथा आध्यात्मिक विचारों में विभिन्नताएं थीं किन्तु उद्देंश्यों की समानताएं स्पश्ट थीं। सभी संत समाज की विशमताओं के प्रति जागरूक थे। समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं उनके कुप्रभावों से अवगत कराकर उससे छुटकारा पाने का उनका सद्परामर्ष तत्कालीन समाज को स्वच्छ बनाने में सहायक सिद्ध हुआ। संतो ने बाह्याचार बाह्याडम्बर मूलक अंधविष्वासों अमानवीय मान्यताओं, रूढियों की आलोचना करके जीवन को सात्विक बनाने का परामर्ष दिया। समाज की धार्मिक दृश्टि का परिषोधन कर सहिश्णुता की भावना को पुनर्जीवित किया। दलित वर्ग तथा स्त्रियों की स्थिति में सुधार एवं मानवता की समानता को प्रोत्साहन दिया। संतों के धार्मिक व नैतिक निर्देषों से नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने में सहायता मिली। देषज भाशा व साहित्य को समृद्धि प्रदान की। ये संत विभिन्न सम्प्रदायों एवं जातियों तथा मानव मात्र में समन्वय के प्रति सचेश्ट थे। इन सम्प्रदायों एवं इनके प्रणेता संतों ने जिन नवीन जीवन मूल्यों को स्थापित किया वह समाज में अग्रगामी रहीं और सामाजिक एकता व समरसता स्थापित करने में सहायक सिद्ध हुई।

## संदर्भ सूची


1. इरफान हबीब, भारतीय इतिहास में मध्यकाल, पृश्ठ – 145
2. विस्तृत विवेचन के लिये दृश्टव्य है–आर0 जी0 भण्डारकर, वैश्णव, षैव एवं अन्य धर्म (अनुवाद उमाषंकर व्यास) भूमिका अंष पृश्ठ 1– 96 तथा परिषिश्ट पृश्ठ – 242–48
3. परषुराम चतुर्वेदी , उत्तरी भारत की संत परम्परा, 1968, पृश्ठ – 256
4. नगेन्द्र, भारतीय साहित्य, पृश्ठ – 13
5. हिन्दी साहित्य कोश – पृश्ठ – 787 – 88
6. नगेन्द्र , भारतीय साहित्य पृश्ठ – 16

7. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काषी भाग – 15, पृश्ठ – 117
8. परषुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृश्ठ – 582
9. रामचन्द्र तिवारी, षिवनारायणी सम्प्रदाय और उसका साहित्य वाराणसी, पृश्ठ – 40
10. (अ) सति पुरूश जिसे जाजिआ, सतिगुरू तिस का नाउ। – गुरू अर्जुनदेव
(ब) गुरू गोविन्द दोउ खड़े काके लागौ पाय। बलिहारी गुरू आपनो गोविन्द दियो बताय।। – सन्त साधुसार, पृश्ठ –120
(स) सतगुरू की महिमा अनंत अनंत किया उपकार
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार"– कबीर ग्रंथावली, साखी–1/3
(द) गुरू परसादि रत हरि लाभै, मिटै अभियान, होई अजियारा।– गुरू ग्रंथ साहिब,
पृश्ठ –352
(ध) हमारा सतगुरू बिरले जानै।
सुई के नोक सुमेर चलावै, सो यह रूप बरवानै।। – मलूकदास जी की बानी, पृश्ठ – 1
11. परषुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृश्ठ – 539
12. विलियम क्रुक, ट्राइब्स एण्ड क्रास्टस आफ नार्थ वेस्टर्न प्रविंसेज एण्ड अवध, भाग – 2, 1896 पृश्ठ – 46–47; परषुराम चतुर्वेदी , पूर्वोक्त, पृश्ठ – 545 – 46
13. बुल्ला साहब का षब्दसार – पृश्ठ – 20, 32
14. काका साहब कालेलकर ( संपादक) हिन्दी के जनपद संत, पृश्ठ – 201, 209
15. गगन मगन धुनि गाजे हो, देखि अधर अकास। जन गुलाल बंसहरिया हो, तहं करहि निवास।। गुलाल साहब की बानी, पृश्ठ –31,
16. काका साहब कालेलकर, हिन्दी के जनपद सन्त (संपादित) पृश्ठ – 100
17. "जनम अस्थान खानपुर बुहना, सेवत चरन भिखानंद चौबे।"
–भीखा साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, पृश्ठ – 9
18. हिन्दी के जनपद संत (संपादित) काका साहब कालेलकर – पृश्ठ– 76–78, – 153
19. ऐन एकाउण्ट द वैरियस रेलीजयस सेक्ट्स आफ इंडिया, पृश्ठ–226
20. ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आफ बंगाल
21. ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आफ नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध
22. इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड इथिक्स, पृश्ठ – 579
23. द चमार्स, द रिलिजस लाइफ इंडिया सिरीज, पृश्ठ –212
24. गाजीपुरः ए गजेटियर, वाल्यूम 29 आफ द डिस्ट्रिक्ट गजेटियरर्स आफ द यूनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, इलाहाबाद, 1909
25. इनसाक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड इथिक्स, पृश्ठ – 579
26. मेडीवल मिस्टिसिज्म आफ इंडिया, लंदन, पृश्ठ – 154
27. काका साहब कालेलकर, हिन्दी के जनपद संत, पृश्ठ – 111–113
28. परषुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृश्ठ – 649
29. रामचन्द्र तिवारी षिवनारायणी सम्प्रदाय और उसका साहित्य, पृश्ठ – 208
30. परषुराम चतुर्वेदी, पूर्वोक्त, पृश्ठ – 686.
31. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, संतमत का सरभंग सम्प्रदाय, पटना, 1957 पृश्ठ – 54–172
32. परषुराम चतुर्वेदी, पूर्वोक्त, पृश्ठ 690.
33. वही
34. सरोज कुमार मिश्र, अघोरमतः सिद्धान्त और साधना, पृश्ठ – 76
35. किनाराम विवेक सार पृश्ठ –2
36. किनाराम, गीतावली, पृश्ठ – 12
37. परषुराम चतुर्वेदी, पूर्वोक्त, पृश्ठ – 693.
38. रमेषचन्द्र झा, चंपारन की साहित्य साधना, पृश्ठ – 38.


*Copyright © 2015, Dr. Nutan Singh. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.*